अहिंसा : विश्व-शान्ति की आधार-भूमि

भगवान् महावीर का अहिंसा-धर्म एक उच्चकोटि का आध्यात्मिक एवं सामाजिक धर्म है। यह मानव जीवन को अन्दर और बाहर—दोनों ओर से प्रकाशमान करता है। महावीर ने अहिंसा को भगवती कहा है। मानव की अन्तरात्मा को, अहिंसा भगवती, बिना किसी बाहरी दबाव, भय, आतंक अथवा प्रलोभन के सहज अन्तःप्रेरणा देती है कि मानव विश्व के अन्य प्राणियों को भी अपने समान ही समझे, उनके प्रति बिना किसी भेद-भाव के मित्रता एवं बन्धुता का प्रेमपूर्ण व्यवहार करे। मानव को जैसे अपना अस्तित्व प्रिय है, अपना सुख अभीष्ट है, वैसे ही अन्य प्राणियों को भी अपना अस्तित्व तथा सुख प्रिय एवं अभीष्ट है—यह परिबोध ही अहिंसा का मूल स्वर है। अहिंसा 'स्व' और 'पर' की, 'अपने' और 'पराए' की, घृणा एवं वैर के आधार पर खड़ी की गई भेदरेखा को तोड़ देती है।

अहिंसा का धरातल :

अहिंसा विश्व के समग्र चैतन्य को एक धरातल पर खड़ा कर देती है। अहिंसा समग्र जीवन में एकता देखती है, सब प्राणियों में समानता पाती है। इसी दृष्टि को स्पष्ट करते हुए भगवान् महावीर ने कहा था—**'एगे आया'**—आत्मा एक है, एक रूप है, एक समान है। चैतन्य के जाति, कुल, समाज, राष्ट्र, स्त्री, पुरुष आदि के रूप में जितने भी भेद हैं, वे सब आरोपित भेद हैं, बाह्य निमित्तों के द्वारा परिकल्पित किए गए मिथ्या भेद हैं। आत्माओं के अपने मूल स्वरूप में कोई भेद नहीं है। और, जब भेद नहीं है, तो फिर मानव जाति में यह कलह एवं विग्रह कैसा? त्रास एवं संघर्ष कैसा? घृणा एवं वैर कैसा? यह सब भेदबुद्धि की देन हैं। और अहिंसा में भेदबुद्धि के लिये कोई स्थान नहीं है। अहिंसा और भेदबुद्धि में न कभी समन्वय हुआ है और न कभी होगा। आज जो विश्व नागरिक की कल्पना कुछ प्रबुद्ध मस्तिष्कों में उड़ान ले रही है, 'जय जगत' का उद्घोष कुछ समर्थ चिन्तकों की जिह्वा पर मुखरित हो रहा है, उसको मूर्तरूप अहिंसा के द्वारा ही मिलना सम्भव है। दूसरा कोई ऐसा आधार ही नहीं है, जो विभिन्न परिकल्पनाओं के कारण खण्ड-खण्ड हुई मानव-जाति को एकरूपता दे सके। प्रत्येक मानव के अपने सृजनात्मक स्वातंत्र्य एवं मौलिक अधिकारों की सुरक्षा की गारण्टी, जो विश्वनागरिकता तथा जय-जगत का मूलाधार है—उसे अहिंसा ही दे सकती है, अन्य कोई नहीं। अहिंसा विश्वास की जननी है। और, विश्वास परिवार, समाज और राष्ट्र के पारस्परिक सद्भाव, स्नेह और सहयोग का मूलाधार है। अहिंसा, अविश्वास के कारण इधर-उधर बेतरतीब बिखरे हुए मानव-मन को विश्वास के मंगल सूत्र में जोड़ती है, एक करती है। अहिंसा **'संगच्छध्वम्, संवदध्वम्'** की ध्वनि को जन-जन में अनुगुंजित करती है, जिसका अर्थ है—साथ चलो, साथ बोलो। मानव-जाति की एकसूत्रता के लिए यह 'एक साथ' का मन्त्र सबसे बड़ा मन्त्र है। यह 'एक साथ' का महामन्त्र मानव-जाति को व्यष्टि की क्षुद्र भावना से समष्टि की व्यापक भावना की दिशा में अग्रसर करता है। अहिंसा का उपदेश है, संदेश है, आदेश है कि व्यक्तिगत अच्छाई, प्रेम और त्याग से, आपसी सद्भावनापूर्ण पावन परामर्श से, केवल साधारण स्तर की सामाजिक एवं राजनैतिक समस्याओं को ही नहीं, जाति, सम्प्रदाय, संस्कृति और राष्ट्रों की विषम-से-विषम उलझनों को भी सुलझाया जा सकता है। और, यह सुलझाव ही भेद में अभेद का, अनेकता में एकता का विधायक है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहिंसा-भावना का विकास :

मानव अपने विकास के आदिकाल में अकेला था, वैयक्तिक सुख-दुःख की सीमा में घिरा हुआ, एक जंगली जानवर की तरह। उस युग में न कोई पिता था, न कोई माता थी, न पुत्र था, न पुत्री थी, न भाई था और न बहिन थी। पति और पत्नी भी नहीं थे। देह-सम्बन्ध की दृष्टि से ये सब सम्बन्ध थे, फिर भी सामाजिक नहीं थे। इसलिए कि माता-पिता, पुत्र-पुत्री, भाई-बहिन और पति-पत्नी आदि के रूप में तब कोई भी परस्पर भावनात्मक स्थिति नहीं थी। एकमात्र नर-मादा का सम्बन्ध था, जैसा कि पशुओं में होता है। सुख-दुःख के क्षणों में एक-दूसरे के प्रति लगाव का, सहयोग का जो दायित्व होता है, वह उस युग में नहीं था। इसलिए नहीं था कि तब मानवचेतना ने विराट् रूप ग्रहण नहीं किया था। वह एक क्षुद्र वैयक्तिक स्वार्थ की तटबन्दी में अवरुद्ध थी। एक दिन वह भी आया, जब मानव इस क्षुद्र सीमा से बाहर निकला, केवल अपने सम्बन्ध में ही नहीं, अपितु दूसरों के सम्बन्ध में भी उसने कुछ सोचना शुरू किया। उसके अन्तर्मन में सहृदयता, सद्भावना की ज्योति जगी और वह सहयोग के आधार पर परस्पर के दायित्वों को प्रसन्न मन से वहन करने को तैयार हो गया। और, जब वह तैयार हो गया, तो परिवार बन गया; परिवार बन गया, तो माता-पिता, पुत्र-पुत्री, भाई-बहिन और पति-पत्नी आदि सभी सम्बन्धों का आविर्भाव हो गया। और, जैसे-जैसे मानव मन भावनाशील हो कर व्यापक होता गया, वैसे-वैसे पारिवारिक भावना के मूल मानव-जाति में गहरे उतरते गए। फिर तो परिवार से समाज और समाज से राष्ट्र आदि के विभिन्न क्षेत्र भी व्यापक एवं विस्तृत होते चले गए। यह सब भावनात्मक विकास की प्रक्रिया, एक प्रकार से, अहिंसा का ही एक सामाजिक रूप है। मानव-हृदय की आन्तरिक संवेदना की व्यापक प्रगति ही तो अहिंसा है। और यह संवेदना की व्यापक प्रगति ही परिवार, समाज और राष्ट्र के उदभव एवं विकास का मूल है। यह ठीक है कि उक्त विकास-प्रक्रिया में रागात्मक भावना का भी एक बहुत बड़ा अंश है, पर इससे क्या होता है? आखिर तो, यह मानवचेतना की ही एक मानव प्रक्रिया है, और यह अहिंसा है। अहिंसा भगवती के अनन्त रूपों में से यह भी एक रूप है। इस रूप को अहिंसा के मंगल-क्षेत्र से बाहर धकेल कर मानव मानवता के पथ पर एक चरण भी ठीक तरह नहीं रख सकता।

अहिंसा की प्रक्रिया :

अहिंसा मानव-जाति को हिंसा से मुक्त करती है। वैर, वैमनस्य-द्वेष, कलह, घृणा, ईर्ष्या-डाह, दुःसंकल्प, दुर्वचन, क्रोध, अभिमान, दम्भ, लोभ-लालच, शोषण, दमन आदि जितनी भी व्यक्ति और समाज की ध्वंसमूलक विकृतियाँ हैं, सब हिंसा के ही रूप हैं। मानव मन हिंसा के उक्त विविध प्रहारों से निरन्तर घायल होता आ रहा है। मानव उक्त प्रहारों के प्रतिकार के लिए भी कम प्रयत्नशील नहीं रहा है। परन्तु वह प्रतिकार इस लोकोक्ति को ही चरितार्थ करने में लगा रहा कि 'ज्यों-ज्यों दवा की, मर्ज बढ़ता गया।' बात यह हुई कि मानव ने वैर का प्रतिकार वैर से, दमन का प्रतिकार दमन से करना चाहा, अर्थात् हिंसा का प्रतिकार हिंसा से करना चाहा, और यह प्रतिकार की पद्धति ऐसी ही थी, जैसी कि आग को आग से बुझाना, रक्त से सने वस्त्र को रक्त से धोना। वैर से वैर बढ़ता है, घटता नहीं है। घृणा से घृणा बढ़ती है, घटती नहीं है। यह उक्त प्रतिकार ही था, जिसमें से युद्ध का जन्म हुआ, सूली और फांसी का आविर्भाव हुआ। लाखों ही नहीं, करोड़ों मनुष्य भयंकर-से-भयंकर उत्पीड़न के शिकार हुए, निर्दयता के साथ मौत के घाट उतार दिये गए, परन्तु समस्या ज्यों-की-त्यों सामने खड़ी रही। मानव को कोई भी ठीक समाधान नहीं मिला। हिंसा का प्रतिकार हिंसा से नहीं, अहिंसा से होना चाहिए था, घृणा का प्रतिकार घृणा से नहीं; प्रेम से होना चाहिए था। आग का प्रतिकार आग नहीं, जल है। जल ही जलते दावानल को बुझा सकता है। इसीलिए भगवान् महावीर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ने कहा था—'**क्रोध को क्रोध से नहीं, क्षमा से जीतो। अहंकार को अहंकार से नहीं, विनय एवं नम्रता से जीतो। दंभ को दंभ से नहीं, सरलता और निश्छलता से जीतो। लोभ को लोभ से नहीं, सन्तोष से जीतो, उदारता से जीतो।**'[1] इसी प्रकार भय को अभय से, घृणा को प्रेम से जीतना चाहिए और विजय की यह सात्विक प्रक्रिया ही अहिंसा है। अहिंसा प्रकाश की अन्धकार पर, प्रेम की घृणा पर, सद्भाव की वैर पर, अच्छाई की बुराई पर विजय का अमोघ उद्घोष है।

अहिंसा की दृष्टि :

भगवान् महावीर कहते थे—वैर हो, घृणा हो, दमन हो, उत्पीड़न हो—कुछ भी हो, अंततः सब लौट कर कर्ता के ही पास आते हैं। यह मत समझो कि बुराई वहीं रह जाएगी, तुम्हारे पास लौट कर नहीं आएगी। वह आएगी, अवश्य आएगी, कृत कर्म निष्फल नहीं जाता है। कुएँ में की गई ध्वनि प्रतिध्वनि के रूप में वापस लौटती है। और भगवान् महावीर तो यह भी कहते थे कि वह और तू कोई दो नहीं ह। चैतन्य चैतन्य एक है। जिसे तू पीड़ा देता है, वह और कोई नहीं, तू ही तो है। भले आदमी! यदि तू दूसरे को सताता है, तो वह दूसरे को नहीं, अपने को ही सताता है। इस सम्बन्ध में आचारांग सूत्र में आज भी उनका एक प्रवचन उपलब्ध है—

> **"जिसे तू मारना चाहता है, वह तू ही है।**
> **जिसे तू शासित करना चाहता है, वह तू ही है।**
> **जिसे तू परिताप देना चाहता है, वह तू ही है।"**
>
> —आचारांग, १, ५, ५

यह भगवान् महावीर की अद्वैत दृष्टि है, जो अहिंसा का मूलाधार है। जब तक किसी के प्रति पराएपन का भाव रहता है, तब तक मनुष्य परपीड़न से अपने को मुक्त नहीं कर सकता। सर्वत्र 'स्व' की अभेद दृष्टि ही मानव को अन्याय से, अत्याचार से बचा सकती है। उक्त अभेद एवं अद्वैत दृष्टि के आधार पर ही भगवान् महावीर ने परस्पर के आघात-प्रत्याघातों से त्रस्त मानव-जाति को अहिंसा के स्वर में शान्ति और सुख का सन्देश दिया था कि "**किसी भी प्राणी को ··· किसी भी सत्व को न मारना चाहिए, न उस पर अनुचित शासन करना चाहिए, न उसको एक दास (गुलाम) की तरह पराधीन बनाना चाहिए—उसको स्वतन्त्रता से वंचित नहीं करना चाहिए, न उसे परिताप देना चाहिए और न उसके प्रति किसी प्रकार का उपद्रव ही करना चाहिए।**'[1] यह अहिंसा का वह महान् उद्घोष है, जो हृदय और शरीर के बीच, बाह्य प्रवृत्तिचक्र और अन्तरात्मा के बीच, स्वयं और आस-पास के साथियों के बीच एक सद्भावनापूर्ण व्यावहारिक सामंजस्य पैदा कर सकता है। मानव मानव के बीच बन्धुत्ता की मधुर रसधारा बहा सकता है। मानव ही क्यों, अहिंसा के विकास पथ पर निरन्तर प्रगति करते-करते एक दिन अखिल प्राणि जगत के साथ तादात्म्य स्थापित कर सकता है। अहिंसा क्या है? समग्र चैतन्य के साथ बिना किसी भेदभाव के तादात्म्य स्थापित करना ही तो अहिंसा है। अहिंसा में तुच्छ-से-तुच्छ जीव के लिए भी बन्धुत्व का स्थान है। महावीर ने कहा था—जो व्यक्ति सर्वात्मभूत है, सब प्राणियों को अपने हृदय में बसाकर विश्वात्मा बन गया है, उसे विश्व का कोई भी पाप कभी स्पर्श नहीं कर सकता। दशवैकालिक सूत्र में आज भी यह अमर वाणी सुरक्षित है—'**सव्वभूयप्पभूयस्स ··· पावकम्मं न बंधई।**'

---

१. दशवैकालिक सूत्र, ८, ३६

१. आचारांग, १, ४, २.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दंड और अहिंसा :

अहिंसा के उपर्युक्त संदर्भ में एक जटिल प्रश्न उपस्थित होता है—'दण्ड' का। एक व्यक्ति अपराधी है, समाज की नीतिमूलक वैधानिक स्थापनाओं को तोड़ता है और उच्छृङ्खल भाव से अपने अनैतिक स्वार्थ की पूर्ति करता है। प्रश्न है—उसे दण्ड दिया जाए या नहीं? यदि दण्ड दिया जाता है, तो यह परिताप है, परिताड़न है, अतः हिंसा है। और, यदि दण्ड नहीं दिया जाता है, तो समाज में अन्याय-अत्याचार का प्रसार होता है। अहिंसा-दर्शन इस सम्बन्ध में क्या कहता है?

अहिंसा-दर्शन हृदय परिवर्तन का दर्शन है। वह मारने का नहीं, सुधारने का दर्शन है। वह संहार का नहीं, उद्धार का एवं निर्माण का दर्शन है। अहिंसा-दर्शन ऐसे प्रयत्नों का पक्षधर है, जिनके द्वारा मानव के अन्तर में मनोवैज्ञानिक परिवर्तन किया जा सके, अपराध की भावनाओं को ही मिटाया जा सके। क्योंकि अपराध एक मानसिक बीमारी है, जिसका उपचार (इलाज) प्रेम, स्नेह एवं सद्भाव के माध्यम से ही होना चाहिए।

महावीर के अहिंसा दर्शन का सन्देश है कि पापी-से-पापी व्यक्ति से भी घृणा न करो। बुरे आदमी और बुराई के बीच अन्तर करना चाहिए। बुराई सदा बुराई है, वह कभी भलाई नहीं हो सकती। परन्तु बुरा आदमी यथाप्रसंग भला हो सकता है। मूल में कोई आत्मा बुरी है ही नहीं। असत्य, के बीच में भी सत्य, अन्धकार के बीच में भी प्रकाश छिपा हुआ है। विष भी अपने अन्दर में अमृत को सुरक्षित रखे हुए है। अच्छे-बुरे सब में ईश्वरीय ज्योति जल रही है। अपराधी व्यक्ति में भी वह ज्योति है, किन्तु दबी हुई है। हमारा प्रयत्न ऐसा होना चाहिए कि वह ज्योति बाहर आए, ताकि समाज में से अपराध-मनोवृत्ति का अन्धकार दूर हो।

अपराधी को कारागार की निर्मम यंत्रणाओं से भी नहीं सुधारा जा सकता। अधिकतर ऐसा होता है कि कारागार से अपराधी गलत काम करने की अधिक तीव्र भावना ले कर लौटता है। वह जरूरत से ज्यादा कड़वा हो जाता है, एक प्रकार से समाज का उद्दण्ड, विद्रोही, बेलगाम बागी। फाँसी आदि के रूप में दिया जाने वाला प्राणदण्ड एक कानूनी हत्या ही है, और क्या? प्राणदण्ड का दण्ड तो सर्वथा अनुपयुक्त दण्ड है। न्यायाधीश भी एक साधारण मानव है। वह कोई सर्वज्ञ नहीं है कि उससे कभी कोई भूल हो ही नहीं सकती। कभी-कभी भ्रान्तिवश निरपराध भी दण्डित हो जाता है। भगवान् महावीर ने अपने एक प्रवचन में नमि राजर्षि के वचन को प्रमाणित किया है कि कभी-कभी मिथ्या दण्ड भी दे दिया जाता है। मूल अपराधी साफ बच जाता है और बेचारा निरपराध व्यक्ति मारा जाता है—**'अकारिणोऽत्थ बज्झंति, मुच्चई कारगो जणो।'** कल्पना कीजिए, इस स्थिति में यदि कभी निरपराध को प्राणदण्ड दे दिया जाए तो क्या होगा? वह तो दुनिया से चला जाएगा, और उसके पीछे यदि कभी कहीं सही स्थिति प्रमाणित हुई, तो न्याय के नाम पर निरपराध व्यक्ति के खून के धब्बे ही तो शेष रहेंगे? रोगी को रोगमुक्त करने के लिए रोगी को ही नष्ट कर देना, कहाँ का बौद्धिक चमत्कार है? अहिंसा-दर्शन इस प्रकार के दण्ड विधान का विरोधी है। उसका कहना है कि दण्ड देते समय अपराधी के प्रति भी अहिंसा का दृष्टिकोण रहना चाहिए। अपराधी को मानसिक रोगी मान कर उसका मानसिक उपचार होना चाहिए, ताकि समय पर वह एक सभ्य एवं सुसंस्कृत अच्छा नागरिक बन सके। समाज के लिए उपयोगी व्यक्ति हो सके। ध्वंस महान् नहीं है, निर्माण महान् है। अपराधियों की पाशविक भावनाओं को बदलने के स्थान पर कुचलने में ज्यादा विश्वास रखना, मानव की पवित्र मानवता के प्रति अपना विश्वास खो देना है। कुचलने का दृष्टिकोण मूल में ही अमानवीय है, अनुचित है। इससे तो अपराधियों के चरित्र का अच्छा पक्ष भी दब जाता है। परिणामतः सुन्दर परिवर्तन की आशा के अभाव में एक बार अपराध करने वाला व्यक्ति सदा के लिए अपराधी हो जाता है। अपराधी-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से-अपराधी व्यक्ति के पास भी एक उज्ज्वल चरित्र होता है, जो कुछ सामाजिक परिस्थितियों के कारण या तो दब जाता है, या अविकसित रह जाता है। अतः न्यायासन के बौद्धिक वर्ग को अहिंसा के प्रकाश में दण्ड के ऐसे उन्नत, सभ्य, सुसंस्कृत मनोवैज्ञानिक तरीके खोजने चाहिए, जिनसे अपराधियों का सुप्त उज्ज्वल चरित्र सजग हो कर वह समाज के लिए उपयोगी साबित हो सके।

अहिंसा का सही मार्ग :

हो सकता है, कुछ अपराधी बहुत ही निम्न स्तर के हों, उन पर मनोविज्ञान से सम्बन्धित भद्र प्रयोग कारगर न हो सकें, फलतः उनको शारीरिक दण्ड देना आवश्यक हो जाता है। इस अनिवार्य स्थिति में भी अहिंसा-दर्शन कहता है कि जहाँ तक हो सके, करुणा से काम लो। शारीरिक दण्ड भी सापेक्ष होना चाहिए, मर्यादित होना चाहिए, निरपेक्ष एवं अमर्यादित नहीं। शान्त-से-शान्त माता भी कभी-कभी अपनी उद्धत सन्तान को चाँटा मारने के लिए विवश हो जाती है, क्रुद्ध भी हो जाती है, किन्तु अन्तर् में उसका मातृत्व क्रूर नहीं होता, कोमल ही रहता है। माता के द्वारा दिए जाने वाले शारीरिक दण्ड में भी हितबुद्धि रहती है, विवेक रहता है, एक उचित मर्यादा रहती है। भगवान् महावीर का अहिंसा-दर्शन अन्त तक इसी भावना को ले कर चलता है। वह मानव-चेतना के परिष्कार एवं संस्कार में आखिर तक अपना विश्वास बनाए रखता है। उनका आदर्श है—अहिंसा से काम लो। यह न हो सके, तो अल्प से अल्पतर हिंसा का, कम-से-कम हिंसा का पथ चुनो, वह भी हिंसा के लिए नहीं, अपितु भविष्य की बड़ी हिंसा के प्रवाह को रोकने के लिए। इस प्रकार हिंसा में भी अहिंसा की दिव्य चेतना सुरक्षित रहनी चाहिए।

अहिंसा : आज के परिप्रेक्ष्य में :

अन्यायपूर्ण स्थिति को सहते रहना, अन्याय एवं अत्याचार को प्रोत्साहन देना है। यह दब्बूपन का मार्ग अहिंसा का मार्ग नहीं है। कायरता, कायरता है, अहिंसा नहीं है। अहिंसा मानव से अन्याय-अत्याचार के प्रतिकार का न्यायोचित अधिकार नहीं छीनती है। वह कहती है, प्रतिकार करो, परन्तु प्रतिकार के आवेश में मुझे मत भूल जाना। प्रतिकार के मूल में विरोधी के प्रति सद्‌भावना रखनी चाहिए, बुरी भावना नहीं। प्रेम, सद्‌भाव, नम्रता, आत्मत्याग-अपने में एक बहुत बड़ी शक्ति है। कैसा भी प्रतिकार हो, इस शक्ति का चमत्कार एक दिन अवश्य होता है. इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

भगवान् महावीर की अहिंसा दृष्टि :

भगवान् महावीर ने अहिंसा को केवल आदर्श के रूप में ही उपस्थित नहीं किया, अपितु अपने जीवन में उतार कर उसकी शत-प्रतिशत यथार्थता भी प्रमाणित की। उन्होंने अहिंसा के सिद्धान्त और व्यवहार को एक करके दिखा दिया। उनका जीवन उनके अहिंसा योग के महान् आदर्श का ही एक जीता-जागता मूर्तिमान रूप था। विरोधी-से-विरोधी के प्रति भी उनके मन में कोई घृणा नहीं थी, कोई द्वेष नहीं था। वे उत्पीड़क एवं घातक विरोधी के प्रति भी मंगल कल्याण की पवित्र भावना ही रखते रहे। संगम जैसे भयंकर उपसर्ग देने वाले व्यक्ति के लिए भी उनकी आँखें करुणा से गीली हो आई थीं। वस्तुतः उनका कोई विरोधी था ही नहीं। उनका कहना था—विश्व के सभी प्राणियों के साथ मेरी मैत्री है, मेरा किसी के भी साथ कुछ भी वैर नहीं है—**'मित्ती मे सव्वभूएसु, वेरं मज्झं न केणई।'**

भगवान् महावीर का यह मैत्रीभावमूलक अहिंसा भाव इस चरम कोटि पर पहुँच गया था कि उनके श्रीचरणों में सिंह और मृग, नकुल और सर्प—जैसे प्राणी भी अपना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जन्मजात वैर भुला कर सहोदर बन्धु की तरह एक साथ बैठे रहते थे। न सबल में क्रूरता की हिंस्रवृत्ति रहती थी, और न निर्बल में भय, भय की आशंका। दोनों ओर एक जैसा स्नेह का सद्व्यवहार। इसी सन्दर्भ में प्राचीन कथाकार कहता है कि भगवान् के समवसरण में सिंहिनी का दूध मृगशिशु पीता रहता और हिरनी का सिंहशिशु—'**दुग्धं मृगेन्द्रवनितास्तनजं पिबन्ति।**' भारत के आध्यात्मिक जगत् का वह महान् एवं चिरंतन सत्य, भगवान् महावीर के जीवन में साक्षात् साकार रूप में प्रकट हुआ था। उन्होंने स्पष्टतः सूचित किया, कि साधक के अन्तर्जीवन में भी जब अहिंसा की प्रतिष्ठा—पूर्ण जागृति होती है, तो उसके समक्ष जन्मजात वैरवृत्ति के प्राणी भी अपना वैर त्याग देते हैं, प्रेम की निर्मल धारा में अवगाहन करने लगते हैं—"**अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।**'

●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org